

यू. पी. राज्य चीनी निगम लिमिटेड

बनाम

जैन कंस्ट्रक्शन कंपनी व अन्य

25 अगस्त, 2004

[एन. संतोश हेगड़े और एस. बी. सिन्हा, जे. जे.]

मध्यस्थता अधिनियम, 1940 धारा 20 और 39(IV)-मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 21 और 85(2)(A) - पक्षकारों के मध्य विवाद के मामले में मध्यस्थता खण्ड के संदर्भ में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन - ट्रायल कोर्ट का मानना है कि फर्म के अपंजीकृत होने पर ऐसा आवेदन पोषणीय नहीं है, चाहे आवेदक फर्म ने इसके संबंध में संशोधन आवेदन दायर किया हो - उच्च न्यायालय का मानना है कि 1996 के अधिनियम के लागू होने से नये अधिनियम के तहत पक्षकारों को पदच्युत करना - अपील पर निर्णित हुआ : मध्यस्थता कार्यवाहियों के 1996 के अधिनियम के लागू होने से पूर्व शुरू होने पर 1940 के अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे और मामला उच्च न्यायालय को प्रेषित किया गया - इसके अतिरिक्त फर्म को वाद के संस्थित किये जाने के समय पर पंजीकृत होना आवश्यक है, न कि इसके बाद - उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की सत्यता पर भी विचार करना है - भागीदारी अधिनियम 1932 की धारा 69 ।

अपीलार्थी-राज्य चीनी निगम और प्रत्यर्थी-निर्माण कंपनी ने एक अनुबंध किया। पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ लेकिन अपीलार्थी ने अनुबंध में मध्यस्थता खण्ड के अनुसार किसी मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की। प्रत्यर्थी ने मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 20 के तहत आवेदन दायर किया। दीवानी न्यायाधीश ने इसे पोषणीय नहीं माना क्योंकि प्रत्यर्थी फर्म पंजीकृत नहीं थी, भले ही प्रत्यर्थी ने यह स्वीकार किया

था कि वह फर्म के पंजीकरण के संबंध में वादपत्र में आवश्यक कथन करने में विफल रहा था और उसने याचिका में संशोधन के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। इसके बाद प्रतिवादी ने एक अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने अपील को यह निर्देश देते हुए स्वीकार कर लिया कि चूंकि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 को लागू हुआ है, इसलिए पक्षकारों को नए अधिनियम के तहत पदानवत करना होगा। इसलिए वर्तमान अपील।

अपीलार्थी-राज्य चीनी निगम ने तर्क दिया कि मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन 1940 के अधिनियम और 1996 का अधिनियम के तहत पोषणीय नहीं था क्योंकि प्रत्यर्थी फर्म के रूप में पंजीकृत नहीं था और किसी भी स्थिति में, विवादित निर्णय कानूनन अपोषणीय है क्योंकि 1996 के अधिनियम के लागू होने से पहले मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की गई थी।

प्रत्यर्थी-फर्म ने तर्क दिया कि इसी तरह के मामले में इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय को पक्षकारों के बीच अनुबंध के मध्यस्थता खंड के संदर्भ में मामले को प्रेषित करते हुए एक मध्यस्थ नियुक्त करने का निर्देश दिया, चूंकि हस्तगत मामले में भी ऐसा ही प्रावधान है, इसलिए इस पर कार्यवाही की जानी चाहिए।

अपील को अनुमति देते हुए, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

सिविल न्यायाधीश ने वाद में संशोधन के आवेदन को खारिज करके गलत किया है और वास्तव में प्रत्यर्थी-फर्म को साझेदारी अधिनियम के तहत पंजीकृत किया गया था, उस पर उक्त वाद को खारिज करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा। उच्च न्यायालय इन प्रश्नों पर विचार करेगा। इसके अलावा, यह सच है कि साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के अनिवार्य प्रावधान को ध्यान में रखते हुए एक अपंजीकृत

फर्म के मामले में मध्यस्थ कार्यवाही पोषणीय नहीं होगी। फर्म को मुकदमे के प्रस्तुत किये जाने के समय पंजीकृत होना चाहिए न कि बाद में। [830-एफ-जी]

*दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम कोचर निर्माण कार्य और अन्य*, [1998] 8 एस.सी.सी. 559, पर भरोसा किया।

*जगदीश चंद्र गुप्ता बनाम कजारिया ट्रेडर्स (इंडिया) लिमिटेड*, ए.आई.आर. (1964) एस.सी. 1882 और *फर्म अशोक ट्रेडर्स एंड अन्य बनाम गुरुमुख दास सलूजा और अन्य*, [2004] 3 एस.सी.सी. 155, संदर्भित।

1.2. पक्षकारों के बीच विवाद और मतभेद वर्ष 1991 में उत्पन्न हुए और प्रत्यर्थी ने उसी वर्ष मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 20 के तहत एक आवेदन दायर किया। इसने करार में मध्यस्थता खंड का आह्वान किया। मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की गई। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 21 के संदर्भ में किसी विशेष विवाद के संबंध में मध्यस्थता कार्यवाही उस तारीख से शुरू होती है जिस दिन उस विवाद के लिए प्रत्यर्थी द्वारा निवेदन किया जाता है। इसलिए 1996 के अधिनियम के लागू होने से पहले की गई मध्यस्थता कार्यवाही के संबंध में अधिनियम, 1940 के प्रावधान लागू होंगे। इसलिए, मामले को नए सिरे से विचार के लिए उच्च न्यायालय को भेजा जाता है। [831-ए-बी;832-ए-बी]

*मिल्कफूड लिमिटेड बनाम मैसर्स जी.एम.सी. आइसक्रीम (पी) लिमिटेड*, जे.टी. (2004)4 एस. सी. 393, पर निर्भर था।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय: सिविल अपील सं. 5479/2004

उत्तरांचल उच्च न्यायालय के ए.ओ. नंबर 313/2002 में 2.12.2003 दिनांकित निर्णय आदेश से।

अपीलार्थी की ओर से विनय गर्ग।

प्रत्यर्थागण की ओर से प्रदीप मिश्रा।

न्यायालय का निर्णय एस.बी. सिन्हा, द्वारा पारित किया गया था।

यह अपील नैनीताल में उत्तरांचल के उच्च न्यायालय द्वारा ए.ओ. सं. 313/2002 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 2.12.2003 के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके तहत उत्तरदाताओं द्वारा दायर अपील मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (इसके बाद '1940 अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 39 (iv) के तहत होने की अनुमति दी गई थी, जिसमें निर्देश दिया गया था:

"जब से, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 प्रवर्तन में आया है यदि समझौते में कोई मध्यस्थता खंड है, तो नए अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य करने के लिए पक्षकारों के लिए उचित उपाय उपलब्ध है। नए अधिनियम के तहत मध्यस्थता में मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित न्यायाधीश के पास जाना पक्षकार के लिए खुला उपाय है"।

मामले का मूल तथ्य विवादित में नहीं है। अपीलार्थी से संबंधित सिविल कार्यो की एक इकाई के संबंध में पक्षकारों दिनांक 11.4.1988 उसके आसपास एक समझौता किया था। विवाद और मतभेद पक्षों के बीच उत्पन्न होने के बाद, प्रत्यर्था ने उपरोक्त अनुबंध के खंड 34 में निहित एक कथित मध्यस्थता समझौते के उसके आधार पर एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए एक आवेदन 1940 के अधिनियम की धारा 20 के तहत सिविल जज, देहरादून के न्यायालय में दायर किया। उक्त वाद को ओ.एस. No.290/1991 के रूप में चिह्नित किया गया था। इसमें प्रत्यर्था ने अन्य बातों के साथ तर्क दिया:

"संविदा अनुबंध के खंड 34 के तहत पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले सभी विवादों के लिए प्रतिवादी निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किया जाना है। वादी ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए निगम के प्रबंध निदेशक और सचिव को कई पत्र लिखे, लेकिन उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और अब तक किसी भी मध्यस्थ को नियुक्त नहीं किया है, इसलिए वादी न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति कराने का हकदार है।"

दिनांकित 1.5.1992 के निर्णय और आदेश के कारण, विद्वान सिविल न्यायाधीश, देहरादून ने अन्य बातों के साथ-साथ उक्त याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिका भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 69 के परिप्रक्ष्य में यह देखते हुए यह विचारणीय नहीं है वादी फर्म पंजीकृत नहीं है। उक्त निष्कर्ष इस तथ्य के बावजूद आया कि प्रत्यर्थी ने हस्तगत याचिका में संशोधन के लिए आवेदन दायर किया था, जैसा कि विद्वान सिविल न्यायाधीश के निर्णय से प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने यह स्वीकार किया था कि वह फर्म के पंजीकरण के संबंध में वाद में आवश्यक अभिकथन करने में विफल रहा था तथा संशोधन के लिए आवेदन इस संबंध में अपीलार्थी द्वारा उठाई गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए दायर किया गया है। प्रत्यर्थी ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर की जिसे ए.ओ. No.313/2002 के रूप में चिह्नित किया गया था। उक्त अपील को पहले बताए गए तरीके से अनुमति दी गई थी।

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विनय गर्ग प्रस्तुत करेंगे कि चूंकि प्रत्यर्थी-फर्म पंजीकृत नहीं थी, इसलिए 1940 के अधिनियम और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद '1996 अधिनियम' के रूप में संदर्भित) दोनों के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन पोषणीय नहीं था। इस संबंध में, फर्म

*अशोक ट्रेडर्स व अन्य बनाम गुरुमुख दास सलूजा और अन्य*, [2004] 3 एस. सी. सी. 155 निर्भर किया गया है। यह भी तर्क दिया गया कि किसी भी स्थिति में, धारा 85(2)(a) के अधिनियम 1996 के प्रावधान को देखते हुए विवादित निर्णय कानूनी रूप से अस्थिर है क्योंकि मध्यस्थ कार्यवाही 01.05.1991 को अर्थात् 1996 के अधिनियम के लागू होने से पूर्व ही आरंभ हो गई थी।

व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने वाले प्रत्यर्थी ने, *अन्य बातों के साथ*, प्रस्तुत किया कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपील नंबर No.493/1995 में पारित आदेश से उत्पन्न एस.एल.पी.(सी)No.18995/1995 इसी तरह का मामला है जिसमें इस न्यायालय ने अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, जिन्हें मामला प्रेषित किया गया था, को निर्देश दिया कि पक्षकारों के मध्य संविदा खंड 34 के संदर्भ में एक मध्यस्थ नियुक्त करें और इस प्रकार, इस बात का निश्चित रूप से कोई कारण नहीं है कि वर्तमान समझौते के खंड 34, जिसमें समान शर्तें हैं, पर कार्रवाई क्यों नहीं की जानी चाहिए। अन्य बातों के साथ-साथ हमारे समक्ष एक लिखित निवेदन भी दायर किया गया है, जिसमें तर्क दिया गया है कि अपीलार्थी दिनांकित 11.4.1988 के उक्त समझौते के उल्लंघन का दोषी है।

सवाल यह है कि क्या प्रत्यर्थी नं 1- फर्म पंजीकृत है या नहीं यह वास्तव में तथ्य का प्रश्न है। यह सच है कि भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932 की धारा के अनिवार्य प्रावधान को ध्यान में रखते हुए किसी अपंजीकृत फर्म पर माध्यस्थ कार्यवाही पोषणीय नहीं होगी। ऐसा *जगदीशचन्द्र गुप्ता बनाम कजारिया ट्रेडर्स (इंडिया) लिमिटेड*, ए.आई.आर.(1964) एस.सी. 1882 में पारित किया गया। हालाँकि, हम ध्यान दे सकते हैं कि अशोक ट्रेडर्स (ऊपर) फर्म में जगदीश चंद्र गुप्ता का अनुसरण करने के बावजूद माना की भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के तहत 1996 के अधिनियम की धारा 9 के मध्यस्थता खण्ड के अनुसार किसी पक्षकार के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं

पड़ेगा। चूंकि उक्त निर्णय की शुद्धता या अन्यथा हमारे सामने सवाल नहीं है, इसलिए इस संबंध में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं है। लेकिन यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि उच्च न्यायालय ने यह माना कि विद्वान सिविल न्यायाधीश वाद के संशोधन के लिए आवेदन को अस्वीकार करने में गलत था और वास्तव में प्रतिवादी-फर्म भारतीय साझेदारी अधिनियम के तहत पंजीकृत थी, उक्त मुकदमे को उस आधार पर खारिज करने का सवाल ही नहीं उठेगा। लेकिन इस तथ्य में संदेह नहीं हो सकता कि फर्म को वाद की स्थापना के समय पंजीकृत किया जाना चाहिए उसके बाद में नहीं। [दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम कोचर निर्माण कार्य व अन्य, [1998] 8 एस. सी. सी. 559।

अतः उक्त प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए रखे जाएँगे।

एकमात्र प्रश्न जो शेष रहता है, वह है वर्तमान मामले के तथ्य में 1996 के अधिनियम के लागू होने की प्रयोज्यता। विवाद और मतभेद दोनों पक्षकारों के बीच वर्ष 1991 में उत्पन्न हुए। प्रत्यर्थी ने 1940 के अधिनियम की धारा 20 के तहत दिनांक 1.5.1991 को एक आवेदन दायर किया। इसने अनुबंध के खंड 34 में निहित मध्यस्थता समझौते को लागू किया। इसलिए मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की गई। 1996 के अधिनियम की धारा 21 के संदर्भ में किसी विशेष विवाद के संबंध में मध्यस्थता कार्यवाही उस तारीख को शुरू होती है जिस दिन प्रत्यर्थी द्वारा उस विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का अनुरोध प्राप्त किया गया था।

1996 के अधिनियम की धारा 85(2)(ए) इस प्रकार है:

"85. निरसन (1) मध्यस्थता (प्रोटोकॉल और कन्वेंशन) अधिनियम, 1937 (1937 का 6), मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (1940 का 10) और विदेशी पुरस्कार (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम (1961 का 45) को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया गया।

(2) इस तरह के निरसन के बावजूद,

(क) उक्त अधिनियमों के प्रावधान उस मध्यस्थता कार्यवाही के संबंध में लागू होंगे जो इस अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू हुई थी, जब तक कि पक्षों द्वारा अन्यथा सहमति न हो, लेकिन यह अधिनियम उस मध्यस्थता कार्यवाही के संबंध में लागू होगा जो इस अधिनियम के लागू होने पर या उसके बाद शुरू हुई थी।

(ख) उक्त प्रावधान के तहत बनाए गए सभी नियम और अधिसूचनाएं, जहां तक वे इस अधिनियम के प्रतिकूल नहीं हैं, बनाया गया या जारी किया गया माना जायेगा।”

*मिल्कफूड लिमिटेड बनाम मेसर्स जी.एम.सी.आइसक्रीम (पी) लिमिटेड, जे.टी. (2004) 4 एस.सी. 393 के मामले में शेट्टी निर्माण कंपनी प्रा. लिमिटेड बनाम कोंकण रेलवे निर्माण और व अन्य, [1998] 5 एस.सी.सी. 599, थिसेन स्टालुनियन जी.एम.बी.एच. बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, [1999] 9 एस.सी.सी. 334 = जे.टी. 1999 (8) एस.सी. 66, फुएस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड, [2001] 6 एस.सी.सी. 356 और पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अमृतलाल चटर्जी, जेटी (2003) 1 एस.सी. 308 पर निर्भर किया गया जिसमें अभिनिर्धारित किया कि 1996 के अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू की गई मध्यस्थता कार्यवाही के संबंध में, 1940 के अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे।*

इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए विवादित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है। इसे तदनुसार अपास्त किया जाता है। इस मामले को गुणावगुण पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेषित किया जाता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मामला लंबे समय से लंबित है, हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर मामले का जल्द से जल्द निपटारा करें।

उपरोक्त टिप्पणियों व निर्देशों के साथ अपील की अनुमति दी जाती है मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कोस्ट के बारे कोई आदेश नहीं होगा।

एन.जे

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी भारती उपाध्याय (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।